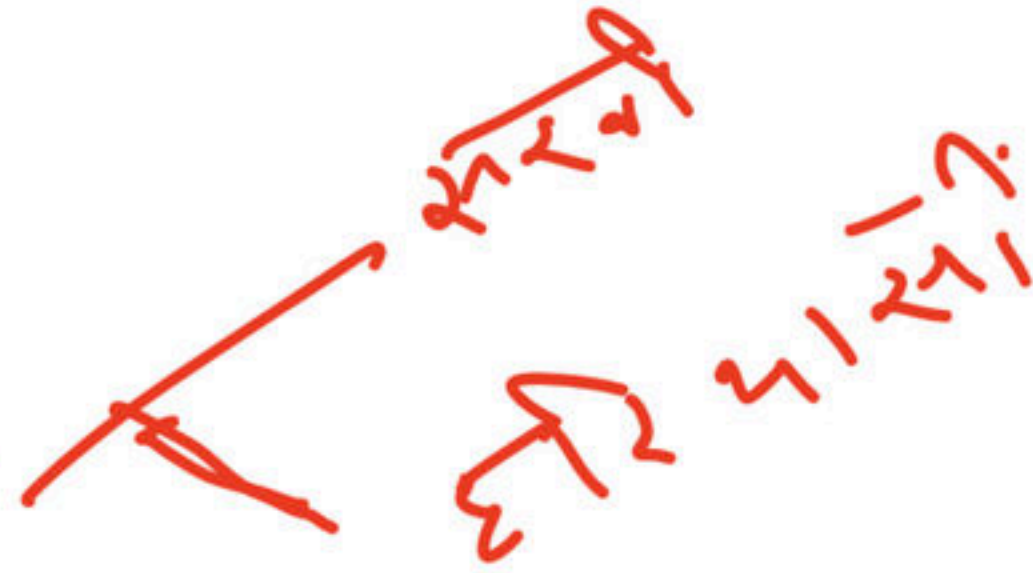


સિંચવાનું

① નિયંત્રણ / સમજાવણી



② સરળ સિંચવાનું → સુસજ્જિત →

સુસજ્જિત
(સિંચવાનું
જોઈતું)

વિશ્લેષણ



સિંચવાનું

સુસજ્જિત - સમજાવણી

③ સરળ સિંચવાનું x x x

④ ગોળીય સિંચવાનું

कृष्णभक्ति काव्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

प्रकरण 5

सगुण धारा

कृष्णभक्ति शाखा

२१ / 1535

• श्रीवल्लभाचार्यजी—पहले कहा जा चुका है कि विक्रम की पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का जो आंदोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक रहा उसके श्रीवल्लभाचार्यजी प्रधान प्रवर्तकों में से थे। आचार्यजी का जन्म संवत् 1535, वैशाख कृष्ण 11 को और गोलोकवास संवत् 1587, आषाढ़ शुक्ल 3 को हुआ। ये वेदशास्त्र में पारंगत धुरंधर विद्वान् थे।

रामानुज से लेकर वल्लभाचार्य तक जितने भक्त दार्शनिक या आचार्य हुए हैं, सबका लक्ष्य शंकराचार्य के मायावाद और विवर्त्तवाद से पीछा छुड़ाना था जिसके अनुसार भक्ति अविद्या या भ्रांति ही ठहरती है। शंकर ने केवल निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की थी। वल्लभ ने ब्रह्म में सब धर्म माने। सारी सृष्टि को उन्होंने लीला के लिए ब्रह्म की आत्मकृति कहा। अपने को अंशरूप जीवों में बिखराना ब्रह्म की लीलामात्र है। अक्षर ब्रह्म अपनी आविर्भाव तिरोभाव की अचिंत्य शक्ति से जगत् के रूप में परिणत भी होता है और उसके परे भी

unacademy
रहता है। वह अपने सत्, चित् और आनंद, इन तीनों स्वरूपों का आविर्भाव और तिरोभाव करता रहता है। जीव में सत् और चित् का आविर्भाव रहता है, पर आनंद का तिरोभाव। जड़ में केवल सत् का आविर्भाव रहता है, चित् और आनंद दोनों का तिरोभाव। माया कोई वस्तु नहीं।✕

श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं जो दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर ‘पुरुषोत्तम’ कहलाते हैं। आनंद का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम रूप में रहता है, अतः यही श्रेष्ठ रूप है। पुरुषोत्तम कृष्ण की सब लीलाएँ नित्य हैं। वे अपने भक्तों के लिए ‘व्यापी वैकुण्ठ’ में (जो विष्णु के वैकुण्ठ से ऊपर है) अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते रहते हैं। गोलोक इसी व्यापी वैकुण्ठ का एक खंड है जिसमें नित्य रूप में यमुना, वृंदावन, निकुंज इत्यादि सब कुछ है। भगवान् की इस ‘नित्यलीला सृष्टि’ में प्रवेश करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है।

शंकर ने निर्गुण को ही ब्रह्म का पारमार्थिक या असली रूप कहा था और

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

लोका मर्त्यादि

वेद मर्त्यादि

न्याय

उम - ॐ नमो

प्रास्ताविक

कुलदीप

सगुण को व्यावहारिक या मायिक। वल्लभाचार्य ने बात उलटकर सगुण रूप को ही असली पारमार्थिक रूप बताया और निर्गुण को उसका अंशतः तिरोंहित रूप कहा। भक्ति की साधना के लिए वल्लभ ने उसके 'श्रद्धा' के अवयव को छोड़कर, जो महत्त्व की भावना में मग्न करता है, केवल 'प्रेम' लिया। प्रेमलक्षणा भक्ति ही उन्होंने ग्रहण की। 'धौरासी वैष्णवों की वार्ता' में सूरदास की एक वार्ता के अंतर्गत प्रेम को ही मुख्य और श्रद्धा या पूज्यबुद्धि को ही आनुषंगिक या सहायक कहा गया है—

"श्री आचार्य जी, महाप्रभु के मार्ग को कहा स्वरूप है? माहात्म्य ज्ञानपूर्वक सुदृढ़ स्नेह तो परम काष्ठ है। स्नेह आगे भगवान् को रहत नहीं ताते भगवान् बेर बेर माहात्म्य जनावत हैं। इन ब्रजभक्तान को स्नेह परम काष्ठापन्न है। ताहि समय तो माहात्म्य रहे, पीछे विस्मृत होय जाय।"

प्रेमसाधना में वल्लभ ने लोकमर्यादा और वेदमर्यादा दोनों का त्याग विधेय ठहराया। इस प्रेमलक्षणा भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है जब भगवान् का अनुग्रह होता है जिसे 'पोषण' या पुष्टि कहते हैं। इसी से वल्लभाचार्यजी ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टिमार्ग' रखा है।

उन्होंने जीव तीन प्रकार के माने हैं—1. पुष्टि जीव, जो भगवान् के अनुग्रह का ही भरोसा रखते हैं और 'नित्यलीला' में प्रवेश पाते हैं। 2. मर्यादा जीव, जो वेद की विधियों का अनुसरण करते हैं और स्वर्ग आदि लोक प्राप्त करते हैं, और 3. प्रवाह जीव, जो संसार के प्रवाह में पड़े सांसारिक सुखों की प्राप्ति में ही लगे रहते हैं।

'कृष्णाश्रय' नामक एक 'प्रकरण ग्रंथ' में वल्लभाचार्य ने अपने समय की अत्यंत विपरीत दशा का वर्णन किया है जिसमें उन्हें वेदमार्ग या मर्यादामार्ग का अनुसरण अत्यंत कठिन दिखाई पड़ा है। देश में मुसलमानी साम्राज्य अच्युत तरह दृढ़ हो चुका था। हिंदुओं का एक मात्र स्वतंत्र और प्रभावशाली राज्य दक्षिण का विजयनगर राज्य रह गया था, पर बहमनी सुलतानों के पड़ोस में रहने के कारण उसके दिन भी गिने हुए दिखाई पड़ते थे। इस्लामी संस्कार धीरे धीरे जमते जा रहे थे। सूफी पीरों के द्वारा सूफी पद्धति की प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रचारकार्य धूम से चल रहा था। एक ओर 'निर्गुण पंथ' के संत लोग वेदशास्त्र की विधियों पर से जनता की आस्था हटाने में जुटे हुए थे। अतः वल्लभाचार्य ने अपने 'पुष्टिमार्ग' का प्रवर्तन बहुत कुछ देशकाल देखकर किया।

वल्लभाचार्यजी के मुख्य ग्रंथ ये हैं—

1. पूर्वमीमांसा भाष्य। 2. उत्तर मीमांसा या ब्रह्मसूत्र भाष्य जो अणुभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इनके श्रद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादन यही प्रधान दार्शनिक ग्रंथ है। 3. श्रीमद्भागवत् की सूक्ष्म टीका तथा सुबोधिनी टीका। 4. तत्त्वदीपनिबंध तथा 5. सोलह छोटे छोटे प्रकरण ग्रंथ। इनमें से पूर्वमीमांसा भाष्य का बहुत थोड़ा सा अंश मिलता है। 'अणुभाष्य' आचार्यजी पूरी न कर सके थे। अतः अंत के डेढ़

कृष्णार्जुन

वल्लभाचार्य

भक्त रसमय की
नित्य लीला
का वर्णन

पूर्व मीमांसा

उत्तर मीमांसा

श्रीमद्भागवत

नित्य

श्रीमद्भागवत

अणुभाष्य

श्री नाथ जी का
मंत्र

→ पूर-मल रोग

कृष्ण काव्य का
रूप

→ सुभाष/सुभाष

↓
गीते काव्य

अध्याय उनके पुत्र गोसाई विद्वत्नाथ ने लिखकर ग्रंथ पूरा किया। भागवत की सूक्ष्म टीका नहीं मिलती, सुबोधिनी का भी कुछ ही अंश मिलता है। प्रकरण ग्रंथों में 'पुष्टिप्रवाहमर्षादा' नाम की पुस्तक मूलचंद तुलसीदास तेसीवाला ने संपादित करके प्रकाशित कराई है।

रामानुजाचार्य के समान वल्लभाचार्य ने भी भारत के बहुत से भागों में पर्यटन और विद्वानों से शास्त्रार्थ करके अपने मत का प्रचार किया था। अंत में अपने उपास्य श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में जाकर उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की और अपने शिष्य पूरनमत खत्री द्वारा गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथजी का बड़ा भारी मंदिर निर्माण कराया तथा सेवा का बड़ा भारी मंडान बाँधा। वल्लभ संप्रदाय में जो उपासना पद्धति या सेवा पद्धति ग्रहण की गई उसमें भोग, राग तथा विलास की प्रभूत सामग्री का प्रदर्शन की प्रधानता रही। मंदिरों की प्रशंसा 'केसर की चकियों चले हैं' कहकर होने लगी। भोगविलास के इस आकर्षण का प्रभाव सेवक सेविकाओं पर कहीं तक अच्छा पड़ सकता था। जनता पर चाहे जो प्रभाव पड़ा हो पर उक्त गद्दी के भक्त शिष्यों ने सुंदर सुंदर पदों द्वारा जो मनोहर प्रेम संगीत द्वारा बहाई उसने मुरझाते हुए हिंदू जीवन को सरस और प्रफुल्ल किया। इस संगीतधारा में दूसरे संप्रदायों के कृष्णभक्तों ने भी पूरा योग दिया।

सब संप्रदायों के कृष्णभक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त समझा। महत्त्व की भावना से उत्पन्न श्रद्धा या पूज्यबुद्धि का अस्पर्श छोड़ देने के कारण कृष्ण के लोकरक्षक और धर्म संस्थापक स्वरूप को सामने रखने की आवश्यकता उन्होंने न समझी। भगवान् के धर्मस्वरूप को इस प्रकार किनारे रख देने से उसकी ओर आकर्षित होने और आकर्षित करने की प्रवृत्ति का विकास कृष्णभक्तों में न हो पाया। फल यह हुआ कि कृष्णभक्त कवि अधिकतर सुलझ भुंगारी पदों की रचना में ही लगे रहे। उनकी रचनाओं में न तो जीवन के जटिल गंभीर पक्षों के मार्मिक रूप स्फुरित हुए, न अनेकरूपता आई। श्रीकृष्ण का इतना चरित ही उन्होंने न लिया जो खंडकाव्य, महाकाव्य आदि के लिए पर्याप्त हो। राधाकृष्ण की प्रेम लीला ही सबने गाई।

भागवत धर्म का उदय यद्यपि महाभारत काल में ही हो चुका था और अवतार की भावना देश में बहुत प्राचीन काल से चली आती थी, पर वैष्णव धर्म के सांप्रदायिक स्वरूप का संघटन दक्षिण में ही हुआ। वैदिक परंपरा के अनुकरण पर अनेक संहिताएँ, उपनिषद्, सूत्रग्रंथ इत्यादि तैयार हुए। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के मधुर रूप का विशेष वर्णन होने से भक्तिक्षेत्र में गोपियों के ढंग के प्रेम का माधुर्य भाव का रस खुला। इसके प्रचार में दक्षिण के मंदिरों की देवदासी प्रथा विशेष रूप में सहायक हुई। माता-पिता मंदिरों में लड़कियों को भड़ा आते थे जहाँ उनका विवाह भी ठाकुरों

दादोरा की मीरा

अंदाज

ज-म- सं २२.३

१२५ - तिरुप्पावई

- १२१२१२ साधु के रूप में गुरुदेव का रहने लगे

८४५ विष्णुदेव की वार्ता

के साथ हो जाता था। उनके लिए मंदिर में प्रतिष्ठित भगवान् की उपासना पतिरूप में विधेय थी। इन्हीं देवदासियों में कुछ प्रसिद्ध भक्तिनेत्र भी हो गई हैं।

दक्षिण में अंदाज इसी प्रकार की एक प्रसिद्ध भक्तिनेत्र हो गई हैं जिनका जन्म संवत् ७७३ में हुआ था। अंदाज के पद द्रविड़ भाषा में 'तिरुप्पावई' नामक पुस्तक में मिलते हैं। अंदाज एक स्थल पर कहती है, 'अब मैं पूर्ण जीवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसी को अपना पति नहीं बना सकती।' इस भाव की उपासना यदि कुछ दिन चले तो उसमें गुहा और रहस्य की प्रकृति हो ही जाएगी। रहस्यवादी सूक्तियों का उल्लेख ऊपर हो चुका है जिनकी उपासना भी 'माधुर्य भाव' की थी। मुसलमानों जमाने में इन सूक्तियों का प्रभाव देश की भक्तिभावना के स्वरूप पर बहुत कुछ पड़ा। 'माधुर्य भाव' को प्रोत्साहन मिला। माधुर्य भाव की जो उपासना चली आ रही थी उसमें सूक्तियों के प्रभाव से 'आभ्यंतर मिलन', 'मूर्छा', 'उन्माद' आदि की भी रहस्यमयी योजना हुई। मीराबाई और चैतन्य महाप्रभु दोनों पर सूक्तियों का प्रभाव पाया जाता है।

१. सूरदासजी—सूरदासजी का वृत्त 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में केवल इतना ज्ञात होता है कि ये पहले गऊगाट (आगरे तथा मथुरा के बीच) पर एक साधु या स्वामी के रूप में रहा करते थे और शिष्य किया करते थे। गोवर्द्धन पर श्रीनाथजी का मंदिर बन जाने के पीछे एक बार वल्लभाचार्यजी गऊगाट पर उतरे तब सूरदास उनके दर्शन को आए और उन्हें अपना बनाया एक पद गाकर सुनाया। आचार्यजी ने उन्हें अपना शिष्य किया और भागवत की कथाओं को माने योग्य पदों में करने का आदेश दिया। उनकी सच्ची भक्ति और पद रचना की निपुणता देख वल्लभाचार्यजी ने उन्हें श्रीनाथजी के मंदिर की कीर्तन सेवा सौंपी। इस मंदिर को पूरनमल खत्री ने गोवर्द्धन पर्वत पर संवत् १५७६ में पूरा बनवाकर खड़ा किया था। मंदिर पूरा होने के ११ वर्ष पीछे अर्थात् संवत् १५८७ में वल्लभाचार्यजी की मृत्यु हुई।

श्रीनाथजी के मंदिर निर्माण के थोड़ा ही पीछे सूरदासजी वल्लभ संप्रदाय में आए, यह 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है—

“औरत पद गाए तब श्री महाप्रभुजी अपने मन में विचारे जो श्रीनाथजी के यहाँ और तो सब सेवा को मंडन भयो है, पर कीर्तन को मंडन नहीं कियो है; तब अब सूरदास को दीजिए।”

अतः संवत् १५८० के आसपास सूरदासजी वल्लभाचार्यजी के शिष्य हुए होंगे और शिष्य होने के कुछ ही पीछे उन्हें कीर्तन सेवा मिली होगी। तब से वे बराबर गोवर्द्धन पर्वत पर ही मंदिर की सेवा करते थे, इसका स्पष्ट आभास 'सूरसारावती' के भीतर मौजूद है। तुलसीदास के प्रसंग में हम कह आए हैं कि भक्त लोग कभी कभी किसी ढंग से अपने को इष्टदेव की कथा के भीतर डालकर उनके चरणों तक पहुँचने की भावना करते हैं। तुलसी ने तो अपने कुछ प्रचलन रूप में पहुँचाया

मीरा व चैतन्य

सूक्तियों का प्रभाव

२६२-४५१५५५

सूरदास की मृत्यु

1) पारसोली ग्राम

2) 1512

3) 1515

(कवि उम्र 67)

4) साहित्य लहरी

(1607 में समाप्त)

है, पर सूर ने प्रकट रूप में। कृष्ण जन्म के उपरांत नंद के घर बराबर आनंदोत्सव हो रहे हैं। उसी बीच एक दाढ़ी आकर कहता है—

नंद जू मेरे मन आनंद भयो, हौं गोवर्द्धन तैं आयो।
तुम्हरे पुत्र भयो, मैं सुनि के अति आतुर उठि पायो॥

जब तुम मदन मोहन करि देतैं, यह सुनि के घर जाऊँ।
हौं तो तेरे घर को दाढ़ी, सूरदास मेरो नाऊँ॥

वत्सभाचार्यजी के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ के सामने गोवर्द्धन की तलहटी के पारसोली ग्राम में सूरदास की मृत्यु हुई, इसका पता भी उक्त 'वार्ता' से लगता है। गोसाईं विट्ठलनाथ की मृत्यु सं. 1642 में हुई। इसके कितने पहले सूरदास का परलोकवास हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

'सूरसागर' समाप्त करने पर सूर ने जो 'सूरसारावली' लिखी है उसमें अपनी अवस्था 67 वर्ष की कही है—

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन॥

तात्पर्य यह कि 67 वर्ष के पहले वे 'सूरसागर' समाप्त कर चुके थे। सूरसागर समाप्त होने के थोड़े ही पीछे उन्होंने 'सारावली' लिखी होगी। एक और ग्रंथ सूरदास का 'साहित्यलहरी' है, जिसमें अलंकारों और नायिका भेदों के उदाहरण प्रस्तुत करने वाले कूट पद हैं। इसका रचनाकाल सूर ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

मुनि सुनि रसन के रस लेख।

दसन गौरीनंद को लिखि सुबल संवत् पेख।

इसके अनुसार संवत् 1607 में 'साहित्यलहरी' समाप्त हुई। यह तो मानना ही पड़ेगा कि साहित्यलहरी का यह ग्रंथ 'सूरसागर' से छुट्टी पाकर ही सूर ने संकलित किया होगा। उसके 2 वर्ष पहले यदि 'सूरसारावली' की रचना हुई, तो कह सकते हैं कि संवत् 1605 में सूरदासजी 67 वर्ष के थे। अब यदि उनकी आयु 80 या 82 वर्ष की मानें तो उनका जन्मकाल संवत् 1540 के आसपास तथा मृत्युकाल संवत् 1620 के आसपास ही अनुमित होता है।

'साहित्यलहरी' के अंत में एक पद है जिसमें सूर अपनी वंशपरंपरा देते हैं। उस पद के अनुसार सूर पृथ्वीराज के कवि चंदबरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट थे। चंद कवि के कुल में हरिचंद हुए जिनके 7 पुत्रों में सबसे छोटे सूरजदास या सूरदास थे।' शेष 6 भाई मुसलमानों से युद्ध करते हुए मारे गए तब अंधे सूरदास बहुत दिनों इधर उधर भटकते रहे। एक दिन वे कुएँ में गिर पड़े और 6 दिन उसी में पड़े रहे। सातवें दिन कृष्ण भगवान् उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें दृष्टि देकर अपना दर्शन दिया। भगवान् ने कहा कि दक्षिण के प्रबल ब्राह्मण कुल द्वारा शत्रुओं का नाश होगा और तू सब विद्याओं में निपुण होगा। इस पर सूरदास ने वर माँगा

साहित्य लहरी

सं. 1607 में

समाप्त हुई

रचना वंश

परंपरा

सूरदास की

वंशपरंपरा

सूर कवि, सुनि के
 हैं जो रत्न-चाल
 में।"

महमद
 !
 मोहदास

कि जिन आँखों से मैंने आपका दर्शन किया उनसे अब और कुछ न देखूँ और सदा आपका भजन करूँ। कुर्र से जब भगवान् ने उन्हें बाहर निकाला तब वे ज्यों के त्यों अंधे हो गए और ब्रज में आकर भजन करने लगे। वहाँ गोसाईजी ने उन्हें 'अष्टछाप' में लिया।

हमारा अनुमान है कि 'साहित्यलहरी' में यह पद पीछे किसी भाट के द्वारा जोड़ा गया है। यह पंक्ति ही—

प्रबल दण्डिन विप्रकुल तें सनु स्वैह नास।

इसे सूर के बहुत पीछे की रचना बता रही है। 'प्रबल दण्डिन विप्रकुल' से साफ पेशवाओं की ओर संकेत है। इसे खींचकर अध्यात्म पक्ष की ओर मोड़ने का प्रयत्न व्यर्थ है।

सारांश यह है कि हमें सूरदास का जो जोड़ा सा वृत्त 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में मिलता है उसी पर संतोष करना पड़ता है। यह 'वार्ता' भी यद्यपि कल्हनाचार्यजी के पौत्र गोकुलनाथजी की कही जाती है, पर उनकी लिखी नहीं जान पड़ती। इसमें कई जगह गोकुलनाथजी के श्रीमुख से कही हुई बातों का बड़े आदर और सम्मान के शब्दों में उल्लेख है और कल्हनाचार्यजी की शिष्या न होने कारण भीराबाई को बहुत बुरा भला कहा गया है, और गालियाँ तक दी गई हैं। रंग दंग से यह वार्ता गोकुलनाथजी के पीछे उनके किसी गुजराती शिष्य की रचना जान पड़ती है।

'भक्तमाल' में सूरदास के संबंध में केवल एक यही छप्पय मिलता है—

उक्ति घोत्र अनुप्रास बरन अस्विति अति भारी।
 बचन प्रीति निर्वाह अर्ब अद्भुत तुक पारी॥
 प्रतिबिंबित दिशि दिष्टि, हृदय हरितीता भारी।
 जनम करम गुन रूप सबे रसना परकासी॥
 विमल बुद्धि गुन और की जो यह गुन श्रवनि परे।
 सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं तिर चालन करे॥

इस छप्पय में सूर के अंधे होने भर का संकेत है जो परंपरा से प्रसिद्ध चला आता है। जीवन का कोई विशेष प्रामाणिक वृत्त न पाकर इधर कुछ लोगों ने सूर के समय के आसपास के किसी ऐतिहासिक लेख में जहाँ कहीं सूरदास नाम मिला है वहीं का वृत्त प्रसिद्ध सूरदास पर पढ़ाने का प्रयत्न किया है। ऐसे दो उल्लेख लोगों को मिले हैं—

1. 'आईने अकबरी' में अकबर के दरबार में नौकर, गवैयों वीनकारों आदि कलावंतों की जो फिहरिस्त है उसमें बाबा रामदास और उनके बेटे सूरदास दोनों के नाम दर्ज हैं। उसी ग्रंथ में यह भी लिखा है कि सब कलावंतों की सात मंडलियाँ बना दी गई थीं। प्रत्येक मंडली सप्ताह में एक बार दरबार में हाजिर होकर बादशाह का मनोरंजन करती थी। अकबर संवत् 1613 में गद्दी पर बैठा। हमारे सूरदास

संस्कृत

लोक पत्र ✓✓

लोक पत्र ✗✗

संवत् 1580 के आसपास ही वल्लभाचार्यजी के शिष्य हो गए और उनके पहले भी विरक्त साधु के रूप में मऊघाट पर रहा करते थे। इस दशा में संवत् 1613 के बहुत बाद दरबारी नौकरी करने कैसे पहुँचे? अतः 'आईने अकबरी' के सूरदास और सूरसागर के सूरदास एक ही व्यक्ति नहीं ठहरते।

2. 'मुशियातु अबुल फजल' नामक अबुल फजल के पत्रों का एक संग्रह है जिसमें बनारस के किसी संत सूरदास के नाम अबुल फजल का एक पत्र है। बनारस का कराड़ी इन सूरदास के साथ अच्छा बरताव नहीं करता था इससे उसकी शिकायत लिखकर इन्होंने शाही दरबार में भेजी थी। उसी के उत्तर में अबुल फजल का पत्र है। बनारस के सूरदास बादशाह से इलाहाबाद में मिलने के लिए इस तरह बुलाए गए हैं—

'हजरत बादशाह इलाहाबाद में तजरीफ लाएँगे। उम्मीद है कि आप भी शर्क मुलाजमात से मुशरफ होकर मुरीद हकीकी होंगे और खुदा का शुक है कि हजरत भी आपको हकशिनारत जानकर दोस्त रखते हैं।' (फारसी का अनुवाद)

इन शब्दों से ऐसी ध्वनि निकलती है कि ये कोई ऐसे संत थे जिनके अकबर के 'दीन इलाही' में दीक्षित होने की संभावना अबुल फजल समझता था। संभव है कि ये कबीर के अनुयायी कोई संत हों। अकबर का दो बार इलाहाबाद जाना पाया जाता है। एक तो संवत् 1640 में फिर 1661 में। पहली यात्रा के समय का लिखा हुआ भी यदि इस पत्र को मानें तो भी उस समय हमारे सूर का गोलोकवास हो चुका था। यदि उन्हें तब तक जीवित मानें तो वे 100 वर्ष के ऊपर रहे होंगे। मृत्यु के इतने समीप आकर वे इन सब द्रमेतों में क्यों पड़ने जावेंगे, या उनके 'दीनइलाही' में दीक्षित होने की आज्ञा कैसे की जाएगी?

श्री वल्लभाचार्यजी के पीछे उनके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथजी गढ़ी पर बैठे। उस समय तक पुष्टिमार्गी कई कवि सुंदर से सुंदर पदों की रचना कर चुके थे। इससे गोसाईं विट्ठलनाथजी ने उनमें से आठ सर्वोत्तम कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। 'अष्टछाप' के आठ कवि हैं—सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास।

कृष्णभक्ति परंपरा में श्रीकृष्ण की प्रेममयी मूर्ति को ही लेकर प्रेममत्त्व की बड़े विस्तार के साथ व्यंजना हुई है, उनके लोकपक्ष का समावेश उसमें नहीं है। इन कृष्णभक्तों के कृष्ण प्रेमोन्मत्त गोपिकाओं से घिरे हुए गोकुल के श्रीकृष्ण हैं, बड़े बड़े भूपालों के बीच लोकव्यवस्था की रक्षा करते हुए द्वारका के श्रीकृष्ण नहीं हैं। कृष्ण के जिस माधुर रूप को लेकर ये भक्त कवि चले हैं वह इस विज्ञात की तरंगों से परिपूर्ण अनंत सौंदर्य का समुद्र है। उस सार्वभौम प्रेमानंदवन के सम्मुख मनुष्य का हृदय निराते प्रेमलोक में फूला फूला फिरता है। अतः इन कृष्ण भक्त कवियों के संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि वे अपने रंग में मस्त रहनेवाले

कृतवी गीत काव्य

संस्कृत - जयदेव
महिम्नी - त्रिद्यापति
हिन्दी - कृतवी गीत

जीव थे, तुलसीदासजी के समान लोकसंग्रह का भाव इनमें न था। समाज किधर जा रहा है, इस बात की परवा ये नहीं रखते थे, यहाँ तक कि अपने भगवत्प्रेम की पुष्टि के लिए जिस शृंगारमयी लोकोत्तर उठा और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना से इन्होंने जनता को रसोन्मत्त किया, उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखनेवाले विषय वासनापूर्ण जीवों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, इसकी ओर इन्होंने ध्यान न दिया। जिस राधा और कृष्ण के प्रेम को इन भक्तों ने अपनी मृदातिगूढ़ चरम भक्ति का व्यंजक बनाया उसको लेकर आगे के कवियों ने शृंगार की उन्मादकारिणी उक्तियों से हिन्दी काव्य को भर दिया।

कृष्णचरित के गान में गीतकाव्य की जो धारा पूर्व में जयदेव और विद्यापति ने बहाई, उसी का अवलंबन ब्रज के भक्त कवियों ने भी किया। आगे चलकर अलंकारकाल के कवियों ने अपनी शृंगारमयी मुक्तक कविता के लिए राधा और कृष्ण का ही प्रेम लिया। इस प्रकार कृष्ण संबन्धिनी कविता का स्फुरण मुक्तक के क्षेत्र में ही हुआ, प्रबंध क्षेत्र में नहीं। बहुत पीछे संवत् 1809 में ब्रजवासीदास ने रामचरितमानस के ढंग पर दोहों, चौपाइयों में प्रबंधकाव्य के रूप में कृष्णचरित का वर्णन किया, पर ग्रंथ बहुत साधारण कोटि का हुआ और उसका वैसा प्रसार न हो सका। कारण स्पष्ट है। कृष्णभक्त कवियों ने श्रीकृष्ण भगवान् के चरित का जितना अंश लिया वह एक अच्छे प्रबंधकाव्य के लिए पर्याप्त न था। उनमें मानव जीवन की वह अनेकरूपता न थी जो एक अच्छे प्रबंधकाव्य के लिए आवश्यक है। कृष्णभक्त कवियों की परंपरा अपने इष्टदेव की केवल बाललीला और यौवन सीता लेकर ही अग्रसर हुई जो गीत और मुक्तक के लिए ही उपयुक्त थी। मुक्तक के क्षेत्र में कृष्णभक्त कवियों तथा आलंकारिक कवियों ने शृंगार और वात्सल्य रसों को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया, इसमें कोई सन्देह नहीं।

पहले कहा गया है कि श्री फलभाचार्यजी की आज्ञा से सूरदासजी ने श्रीमद्भागवत् की कथा को पदों में गाया। इनके सूरसागर में वास्तव में भागवत के दशम स्कंध की कथा संक्षेपतः इतिवृत्त के रूप में थोड़े से पदों में कह दी गई है। सूरसागर में कृष्णजन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मयुरा जाने तक की कथा अत्यंत विस्तार से फुटकत पदों में गाई गई है। भिन्न भिन्न लीलाओं के प्रसंग को लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यंत मधुर और मनोहर पदों की झड़ी सी बाँध दी है। इन पदों के संबंध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्य रचना होने पर भी ये इतने सुदौल और परिमार्जित हैं। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होनेवाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी सी जान पड़ती हैं। अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीतकाव्य परंपरा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास का प्रतीक होता है।

अमरगीत

रंज-कृत - भाव

हिन्दी - रंजना

रंजना

अमरगीत के 10 वें
रंजना की रंजना
कथा

गीतों की परंपरा तो सभ्य असभ्य सब जातियों में अत्यंत प्राचीनकाल से चली आ रही है। सभ्य जातियों ने लिखित साहित्य के भीतर भी उनका समावेश किया है। लिखित रूप में आकर उनका रूप पंडितों की काव्यपरंपरा की रुढ़ियों के अनुसार बहुत कुछ बदल जाता है। इससे जीवन के कैसे कैसे योग सामान्य जनता का मर्म स्पर्श करते आए हैं और भाषा की किन किन पद्धतियों पर वे अपने गहरे भावों की व्यंजना करते आए हैं, इसका ठीक पता हमें बहुत काल से चले आते हुए मौखिक गीतों से ही लग सकता है। किसी देश की काव्यधारा के मूल प्राकृतिक स्वरूप का परिचय हमें विरकाल से चले आते हुए इन्हीं गीतों से मिल सकता है। घर घर प्रचलित स्त्रियों के घरेलू गीतों में शृंगार और करुण दोनों का बहुत स्वाभाविक विकास हम पाएँगे। इसी प्रकार आल्हा, कड़खा, आदिपुरियों के गीतों में वीरता की व्यंजना की सरल स्वाभाविक पद्धति मिलेगी। देश की अंतर्वर्तिनी मूल भावधारा के स्वरूप के ठीक ठीक परिचय के लिए ऐसे गीतों का पूर्ण संग्रह बहुत आवश्यक है। पर इस संग्रह कार्य में उन्हीं का हाथ लगाना ठीक है जिन्हें भारतीय संस्कृति के मार्मिक स्वरूप की परख हो जिनमें पूरी ऐतिहासिक दृष्टि हो।

स्त्रियों के बीच चले आते हुए बहुत पुराने गीतों को ध्यान से देखने पर पता लगेगा कि उनमें स्वकीया के ही प्रेम की सरल गंभीर व्यंजना है। परकीया प्रेम के जो गीत हैं वे कृष्ण और गोपिकाओं की प्रेमलीला को ही लेकर चले हैं, इससे उन पर भक्ति या धर्म का भी कुछ रंग पड़ा रहता है। इस प्रकार के मौखिक गीत देश के प्रायः सब भागों में गाए जाते थे। मैथिल कवि विद्यापति (संवत् 1460) की पदावली में हमें उनका साहित्यिक रूप मिलता है। जैसा कि हम पहले कह आए हैं, सूर के शृंगारी पदों की रचना बहुत कुछ विद्यापति की पद्धति पर हुई है। कुछ पदों के तो भाव भी बिल्कुल मिलते हैं, जैसे—

अनुखन मायव मायव सुमिरइत सुंदरी बेसि मपाई।

ओ निज भाव सुभावाहि बिसरल अपने मुन लुकाई॥

× × ×

भोरहि सहचरि कालर दिटि हेरि छल छल सोपन पानि।

अनुखन राधा राधा रटइत आधा आधा बानि॥

राधा सयें जब पनितहि मायव मायव सयें जब राधा॥

दारुन प्रेम तबहि नहिं टूटत बाढ़त विरह क बापा॥

दुहुं दिसि दारु दहन जइसे दगधइ आकुल कीट परान।

ऐसन बल्लभ हेरि सुधामुखि कवि विद्यापति भान॥

इस पद का भावार्थ यह है कि प्रतिक्षण कृष्ण का स्मरण करते करते राधा कृष्ण रूप हो जाती हैं और अपने को कृष्ण समझकर राधा के वियोग में 'राधा

राधा' रटने लगती हैं। फिर जब होश में आती हैं तब कृष्ण के विरह में संतप्त होकर फिर 'कृष्ण कृष्ण' करने लगती हैं। इस प्रकार अपनी सुध में रहती हैं तब भी, नहीं रहती हैं तब भी दोनों अवस्थाओं में उन्हें विरह का ताप सहना पड़ता है। उनकी दशा उस लकड़ी के भीतर के कीड़े सी रहती है जिसके दोनों छोरों पर आग लगी हो। अब इसी भाव का सूर का यह पद देखिए—

सुनौ स्याम! यह बात और कोउ क्यों समुझाय कहै।
 दुहुँ दिसि की रति विरह विरहिनी कैसे कै जो सहै॥
 जब राधे, तब ही मुख 'माधौ माधौ' रटति रहै।
 जब माधौ ह्वै जाति सकल तनु राधा विरह दहै॥
 उभय अग्र दव दारुकीट ज्यों सीतलताहि चहै।
 सूरदास अति विकल विरहिनी कैसेहु सुख न लहै।

(सूरदास, पृ. 564 वेंकटेश्वर)

✓ 'सूरसागर' में जगह जगह दृष्टिकूट वाले पद मिलते हैं। यह भी विद्यापति का अनुकरण है। 'सारंग' शब्द को लेकर सूर ने कई जगह कूट पद कहे हैं। विद्यापति की पदावली में इसी प्रकार का एक कूट देखिए—

सारंग नयन, बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
 सारंग उपर उगल दस सारंग केलि करथि मधु पाने॥

सूरदास की रति कोउ तेरे सने सने सने सने में सीनें ही भावना नर की ली। विरहि

पच्छिमी हिन्दी बोलनेवाले सारे प्रदेशों में गीतों की भाषा ब्रज ही थी। दिल्ली के आसपास भी गीत ब्रजभाषा में ही गाए जाते थे, यह हम खुसरो (संवत् 1340) के गीतों में दिखा आए हैं। कबीर (संवत् 1560) के प्रसंग में कहा जा चुका है कि उनकी साखी की भाषा तो 'सधुक्कड़ी' है, पर पदों की भाषा काव्य में प्रचलित ब्रजभाषा है। यह एक पद तो कबीर और सूर दोनों की रचनाओं के भीतर ज्यों का त्यों मिलता है—

है हरिभजन को परवान।

नीच पावै ऊँच पदवी, बाजते नीसान।

भजन को परताप ऐसो तिरे जल पाषान।

अधम भील, अजाति गनिका चढ़े जात बिवाँन।

नवलख तारा चलै मंडल, चलै ससहर भान।

दास धू कौ अटल पदवी राम को दीवान।

निगम जाकी साखि बोलैं कथैं संत सुजान।

जन कबीर तेरो सरनि आयो, राखि लेहु भगवान॥

(कबीर ग्रंथावली, पृ. 190)

है हरि भजन को परमान।

नीच पावै ऊँच पदवी, बाजते नीसान।

भजन को परताप ऐसों जल तरै पाषान ।
 अजामिल अरु भील गनिका चढ़े जात विमान ।
 चलत तारे सकल मंडल, चलत ससि अरु भान ।
 भक्त ध्रुव को अटल पदवी राम को दीवान ।
 निगम जाको सुजस गावत, सुनत संत सुजान ।
 सूर हरि की सरन आयौ, राखि ले भगवान॥

(सूरसागर, पृ. 564, वेंकटेश्वर)

कबीर की सबसे प्राचीन प्रति में भी यह पद मिलता है इससे नहीं कहा जा सकता कि सूर की रचनाओं के भीतर यह कैसे पहुँच गया ।

राधाकृष्ण की प्रेमलीला के गीत सूर के पहले से चले आते थे, यह तो कहा ही जा चुका है । बैजू बावरा एक प्रसिद्ध गवैया हो गया है जिसकी ख्याति तानसेन के पहले देश में फैली हुई थी । उसका एक पद देखिए—

मुरली बजाय रिझाय लई मुख मोहन तैं ।

गोपी रीझि रही रसतानन सों सुधबुध सब बिसराई ।

धुनि सुनि मन मोहे, मगन भई देखत हरि आनन ।

जीव जंतु पसु पंछी सुर नर मुनि मोहे, हरे सब के प्रानन ।

बैजू बनवारी बंसी अधर धरि वृंदावनचंद बस किए सुनत ही कानन॥

जिस प्रकार रामचरित का गान करनेवाले कवियों में गोस्वामी तुलसीदासजी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार कृष्णचरित गानेवाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदासजी का। वास्तव में ये हिन्दी काव्य गगन के सूर्य और चंद्र हैं। जो तन्मयता इन दोनों भक्त शिरोमणि कवियों की वाणी में पाई जाती है वह अन्य कवियों में कहाँ? हिन्दी काव्य इन्हीं के प्रभाव से अमर हुआ, इन्हीं की सरसता से उसका स्रोत सूखने न पाया। सूर की स्तुति में, एक संस्कृत श्लोक के भाव को लेकर यह दोहा कहा गया है—

उत्तम पद कवि गंग के, कविता को बल वीर।

केशव अर्थ गंभीर को, सूर तीन गुन धीर॥

इसी प्रकार यह दोहा भी बहुत प्रसिद्ध है—

किधौँ सूर को सर लग्यो, किधौँ सूर को पीर।

किधौँ सूर को पद लग्यो, बेध्यो सकल सरीर॥

यद्यपि तुलसी के समान सूर का काव्यक्षेत्र इतना व्यापक नहीं कि उसमें जीवन की भिन्न भिन्न दशाओं का समावेश हो पर जिस परिमित पुण्यभूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया उसका कोई कोना अछूता न छूटा। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक और कोई किसी कवि की नहीं। इन दोनों क्षेत्रों में तो इस महाकवि ने मानो औरों के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने गीतावली में बाललीला को इनकी देखादेखी बहुत अधिक विस्तार दिया सही, पर उसमें बालसुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आई, उसमें रूप वर्णन की ही प्रचुरता रही। बाल चेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भांडार और कहीं नहीं। दो-चार चित्र देखिए—

1. काहे को आरि करत मेरे मोहन! यों तुम आँगन लोटी?
जो माँगहु सो देहुँ मनोहर, यहै बात तेरी खोटी।
सूरदास को ठाकुर ठाढ़ो हाथ लकुट लिए छोटी ॥
2. सोभित कर नवनीत लिए।
पुटुरुन चलन रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए ॥
3. सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरवराय कर पानि गहावति, डगमगाय धरै पैयाँ ॥
4. पाहुनि करि दै तनक मह्यौ।
आरि करै मनमोहन मेरो, अंचल आनि गह्यो ॥
व्याकुल मथत मथनियाँ रीती, दधि भ्रैं ढरकि रह्यौ ॥

बालकों के स्वाभाविक भावों की व्यंजना के न जाने कितने सुंदर पद भरे पड़े हैं। 'स्पर्धा' का कैसा सुंदर भाव इस प्रसिद्ध पद में आया है—

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी!

कितिक बार मोहिं दूध पियत भइ, यह अजहूँ है छोटी ।

तू जो कहति 'बल' की बेनी ज्यों ह्वैहै लाँबी मोटी ॥

इसी प्रकार बालकों के क्षोभ के ये वचन देखिए—

खेलत में को काको गुसैयाँ?

जाति पाँति हम तें कह्यु नाहीं, नाहिंन बसत तुम्हारी ठैयाँ ।

अति अधिकार जनावत यातें, अधिक तुम्हारे हैं कह्यु गैयाँ ॥

वात्सल्य के समान ही शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं। गोकुल में जब तक श्रीकृष्ण रहे तब तक का उनका सारा जीवन ही संयोगपक्ष है। दानलीला, माखनलीला, चीरहरणलीला, रासलीला आदि न जाने कितनी लीलाओं पर सहस्रों पद भरे पड़े हैं। राधाकृष्ण के प्रेम के प्रादुर्भाव में कैसी स्वाभाविक परिस्थियों का चित्रण हुआ है, यही देखिए—

(क) करि ल्यौ न्यारी, हरि आपनि गैयाँ ।

नहिं न बसात लाल कह्यु तुमसों सबै ग्वाल इक ठैयाँ ॥

(ख) धेनु दुहत्त अति ही रति बाढ़ी ।

एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी टाढ़ी ।

मोहन कर तें धार चलति पय मोहनि मुख अति ही छबि बाढ़ी ॥

शृंगार के अंतर्गत भावपक्ष और विभावपक्ष दोनों के अत्यंत विस्तृत और अनूट वर्णन इस सागर के भीतर लहरें मार रहे हैं। राधाकृष्ण के रूपवर्णन में ही सैकड़ों पद कहे गए हैं जिनमें उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि की प्रचुरता है। आँख पर ही न जाने कितनी उक्तियाँ हैं, जैसे—

देखि री! हरि के चंचल नैन।
 खंजन मीन, मृगज चपलाई, नहिं पटतर एक सैन।
 राजिवदल इंदीवर, शतदल, कमल, कुशेशय जाति।
 निसि मुद्रित प्रातहि वै विगसत, ये विगसे दिन राति॥
 अरुन असित सित झलक पलक प्रति, को बरनै उपमाय।
 मानो सरस्वति गंग जमुन मिलि आगम कीन्हों आय॥
 नेत्रों के प्रति उपालंभ भी कहीं कहीं बड़े मनोहर हैं—

मेरे नैना विरह की बेल बई।
 सींचत नैन नीर के, सजनी! मूल पताल गई।
 विगसति लता सुभाय आपने छाया सघन भई॥
 अब कैसे निरुवारों, सजनी! सब तन पसरि गई॥

आँख तो आँख, कृष्ण की मुरली तक में प्रेम के प्रभाव से गोपियों की ऐसी सजीवता दिखाई पड़ती है कि वे अपनी सारी प्रगल्भता उसे कोसने में खर्च कर देती हैं—

✓ मुरली तऊ गोपालहि भावति ।

सुन री सखी! जदपि नँदनंदहि नाना भाँति नचावति॥

राखति एक पाँय ठाढ़े करि, अति अधिकार जनावति ।

आपुनि पौढ़ि अधर सज्जा पर करपल्लव सों पद पलुटावति॥

भृकुटी कुटिल कोप नासापुट हम पर कोपि कोपावति ।

कालिंदी के कूल पर शरत् की चाँदनी में होनेवाले रास की शोभा का क्या कहना है, जिसे देखने के लिए सारे देवता आकर इकट्ठे हो जाते थे। सूर ने एक न्यारे प्रेमलोक की आनंद छटा अपने बंद नेत्रों से देखी है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों का जो विरहसागर उमड़ा है उसमें मग्न होने पर तो पाठकों को वारंपार नहीं मिलता। वियोग की जितने प्रकार की दशाएँ हो सकती हैं सबका समावेश उसके भीतर है। कभी तो गोपियों को संध्या होने पर यह स्मरण आता है—

एहि बेरियाँ बन तें चलि आवते ।

दूरहिं ते वह बेनु, अधर धरि बारम्बार बजावते॥

कभी वे अपने उजड़े हुए नीरस जीवन के मेल में न होने के कारण वृंदावन के हरे भरे पेड़ों को कोसती हैं—

मधुबन तुम कत रहत हरे?

✓ विरह वियोग स्यामसुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे?

तुम हौ निलज, लाज नहिं तुमको, फिर सिर पुहुप धरे॥
 ससा स्यार औ बन के पखेरू धिक धिक सबन करे।
 कौन काज ठाढ़े रहे बन में, काहे न उकठि परे॥

परंपरा से चले आते हुए चंद्रोपालंभ आदि सब विषयों का विधान सूर के वियोगवर्णन के भीतर है, कोई बात छूटी नहीं है।

सूर की बड़ी भारी विशेषता है नवीन प्रसंगों की उद्भावना। प्रसंगोद्भावना करनेवाली ऐसी प्रतिभा हम तुलसी में नहीं पाते। बाललीला और प्रेमलीला दोनों के अंतर्गत कुछ दूर तक चलनेवाले न जाने कितने छोटे छोटे मनोरंजक वृत्तों की कल्पना सूर ने की है। जीवन के एक क्षेत्र के भीतर कथावस्तु की यह रमणीय कल्पना ध्यान देने योग्य है।

राधाकृष्ण के प्रेम को लेकर कृष्णभक्ति की जो काव्यधारा चली उसमें लीलापक्ष अर्थात् बाह्यार्थविधान की प्रधानता रही है। उसमें केलि, विलास, रास, छेड़छाड़, मिलन की युक्तियों आदि बाहरी बातों का ही विशेष वर्णन है। प्रेमलीन हृदय की नाना अनुभूतियों की व्यंजना कम है। वियोग वर्णन में कुछ संचारियों का समावेश मिलता है पर वे रूढ़ और परंपरागत है उनमें उद्भावना बहुत थोड़ी पाई जाती है। भ्रमरगीत के अंतर्गत अलबता सूर ने आभ्यंतर पक्ष का भी विस्तृत उद्घाटन किया है। प्रेमदशा के भीतर की न जाने कितनी मनोवृत्तियों की व्यंजना गोपियों के वचनों द्वारा होती है।

सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता। उद्धव तो अपने निर्गुण ब्रह्मज्ञान और योगकथा द्वारा गोपियों को प्रेम से विरत करना चाहते हैं और गोपियाँ उन्हें कभी पेट भर बनाती हैं, कभी उनसे अपनी विवशता और दीनता का निवेदन करती हैं। उद्धव के बहुत बकने पर वे कहती हैं—

ऊधौ! तुम अपनो जतन करौ।

हित की कहत कुहित की लागै, किन बेकाज ररौ॥

जाय करौ उपचार आपनो, हम जो कहति हैं जी की।

कछू कहत कछुवै कहि डारत, धुन देखियत नहिं नीकी॥

इस भ्रमरगीत का महत्त्व एक बात से और बढ़ गया है। भक्तशिरोमणि सूर ने इसमें सगुणोपासना का निरूपण बड़े ही मार्मिक ढंग से—हृदय की अनुभूति के आधार पर, तर्क पद्धति पर नहीं—किया है। सगुण निर्गुण का यह प्रसंग सूर अपनी ओर से लाए हैं जिससे संवाद में बहुत रोचकता आ गई है। भागवत में यह प्रसंग नहीं है। सूर के समय में निर्गुण संत संप्रदाय की बातें जोर शोर से चल रही थीं। इसी से उपयुक्त स्थल देखकर सूर ने इस प्रसंग का समावेश कर दिया। जब उद्धव बहुत सा वाग्विस्तार करके निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश बराबर देते चले जाते हैं तब गोपियाँ बीच में रोककर इस प्रकार पूछती हैं—

निर्गुन कौन देस को वासी?

मधुकर हैंसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी ।

और कहती हैं कि चारों ओर भासित इस सगुणसत्ता का निषेध करके तू क्यों व्यर्थ उसके अव्यक्त और अनिर्दिष्ट पक्ष को लेकर यों ही बक बक करता है—

सुनिहै कथा कौन निर्गुन की, रचि पचि बात बनावत ।

सगुन सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृन की ओट दुरावत॥

उस निर्गुण और अव्यक्त का मानव हृदय के साथ भी कोई संबंध हो सकता है, यह तो बताओ—

रेख न रूप, बरन जाके नहि ताको हमैं बतावत ।

अपनी कहौं, दरस ऐसो को तुम कबहूँ हौ पावत?

मुरली अधर धरत है सो, पुनि गोधन बन बन चारत?

नैन बिसाल, भौंह बंकट करि देख्यौ कबहूँ निहारत?

तन त्रिभंग करि, नटवर वपु धरि, पीतांबर तेहि सोहत?

सूर स्याम ज्यों देत हमैं सुख त्यों तुमको सोउ मोहत?

अंत में वे यह कहकर बात समाप्त करती हैं कि तुम्हारे निर्गुण से तो हमें कृष्ण के अवगुणों में ही अधिक रस जान पड़ता है—

[ऊनो कर्म कियो मातुल बधि, मदिरा मत्त प्रमाद ।]

[सूर स्याम एते अवगुन में निर्गुन तें अति स्वाद॥]

सूर स्याम एते अवगुन में निर्गुन तें अति स्वाद॥

✓ 2. नंददास—ये सूरदासजी के प्रायः समकालीन थे और उनकी गणना अष्टछाप में है। इनका कविताकाल सूरदासजी की मृत्यु के पीछे संवत् 1625 में या उसके और आगे तक माना जा सकता है। इनका जीवनवृत्त पूरा पूरा और ठीक ठीक नहीं मिलता। नाभाजी के भक्तमाल में इन पर जो छप्पय है उसमें जीवन के संबंध में इतना ही है—

चंद्राहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पथ में पगे।

इससे इतना ही सूचित होता है कि इनके भाई का नाम चंद्रहास था। इनके गोलोकवास के बहुत दिनों पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजी के नाम से जो 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' लिखी गई उसमें इनका थोड़ा-सा वृत्त दिया गया है। उक्त वार्ता में नंददासजी तुलसीदासजी के भाई कहे गए हैं। गोकुलनाथजी का अभिप्राय प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदासजी से ही है, यह पूरी वार्ता पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि नंददासजी का कृष्णोपासक होना राम के अनन्य भक्त उनके भाई तुलसीदासजी को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने उलाहना लिखकर भेजा। यह वाक्य भी उसमें आया है 'सो एक दिन नंददासजी के मन में ऐसी आई। जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा करी है सो हम हूँ श्रीमद्भागवत भाषा करें।' गोस्वामीजी का नंददास के साथ वृंदावन जाना और वहाँ 'तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बान लेव हाथ' वाली घटना भी उक्त वार्ता में ही

लिखी है। पर गोस्वामीजी का नंददासजी से कोई संबंध न था, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है। अतः उक्त वार्ता की बातों को, जो वास्तव में भक्तों का गौरव प्रचलित करने और वल्लभाचार्यजी की गद्दी की महिमा करने के लिए पीछे से लिखी गई है, प्रमाण कोटि में नहीं ले सकते।

उसी वार्ता में यह भी लिखा है कि द्वारका जाते हुए नंददासजी सिंधुनद ग्राम में एक रूपवती खत्रानी पर आसक्त हो गए। ये उस स्त्री के घर के चारों ओर चक्कर लगाया करते थे। घरवाले हैरान होकर कुछ दिनों के लिए गोकुल चले गए। वहाँ भी वे जा पहुँचे। अंत में वहीं पर गोसाईं विठ्ठलनाथजी के सदुपदेश से इनका मोह छूटा और ये अनन्य भक्त हो गए। इस कथा में ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही है कि इन्होंने गोसाईं विठ्ठलनाथजी से दीक्षा ली। ध्रुवदासजी ने भी अपनी 'भक्तनामावली' में इनकी भक्ति की प्रशंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है।

अष्टछाप में सूरदासजी के पीछे इन्हीं का नाम लेना पड़ता है। इनकी रचना भी बड़ी सरस और मधुर है। इनके संबंध में यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया।' इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'रासपंचाध्यायी' है जो रोला छंदों में लिखी गई है। इसमें जैसा कि नाम से ही प्रकट है, कृष्ण की रासलीला का अनुप्रासादियुक्त साहित्यिक भाषा में विस्तार के साथ वर्णन है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सूर ने स्वाभाविक चलती भाषा का ही अधिक आश्रय लिया है, अनुप्रास और चुने हुए संस्कृत पदविन्यास आदि की ओर प्रवृत्ति नहीं दिखाई है, पर नंददासजी में ये बातें पूर्ण रूप से पाई जाती हैं। 'रासपंचाध्यायी' के अतिरिक्त इन्होंने ये पुस्तकें लिखी हैं—

भक्तनामावली, भक्तवत्सलावली, भक्तवत्सलावली, भक्तवत्सलावली, भक्तवत्सलावली, भक्तवत्सलावली

भागवत दशम स्कंध, रुक्मिणीमंगल, सिद्धांत पचाध्यायी, रूपमंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी, विरहमंजरी, नामचिंतामणिमाला, अनेकार्थनाममाला (कोश), दानलीला, मानलीला, अनेकार्थमंजरी, ज्ञानमंजरी, श्यामसगाई, भ्रमरगीत और सुदामाचरित्र । दो ग्रंथ इनके लिखे और कहे जाते हैं—हितोपदेश और नासिकेतपुराण (गद्य में) । दो सौ से ऊपर इनके फुटकल पद भी मिले हैं । जहाँ तक ज्ञात है, इनकी चार पुस्तकें ही अब तक प्रकाशित हुई हैं—रासपंचाध्यायी, भ्रमरगीत, अनेकार्थमंजरी और अनेकार्थनाममाला । इनमें रासपंचाध्यायी और भ्रमरगीत ही प्रसिद्ध हैं, अतः उनसे कुछ अवतरण नीचे दिए जाते हैं—

(रासपंचाध्यायी से)

ताही छिन उडुराज उदित रस रास सहायक ।
कुंकुम मंडित बदन प्रिया जनु नागरि नायक॥
कोमल किरन अरुन मानो बन व्यापि रही यों ।
मनसिज खेल्यौ फाग घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल ज्यों॥

फटिक छटा सी किरन कुजरंधन जब आई ।
 मानहुँ बितत बितान सुदेस तनाव तनाई ॥
 तब लीनो कर कमल योगमाला सी मुरली ।
 अघटित घटना चतुर बहुरि अधरन सुर जुरली ॥
 (भ्रमरगीत से)

कहन स्याम संदेस एक मैं तुम पै आयो ।
 कहन समय संकेत कहूँ अवसर नहिं पायो ॥
 सोचत ही मन में रख्यो, कब पाऊँ इक ठाउँ ।
 कहि सँदेस नँदलाल को, बहुरि मधुपुरी जाउँ ॥
 सुनौ ब्रजनागरी ।

जौ उनके गुन होय, वेद क्यों नेति बखानै ।
 निरगुन सगुन आत्मा रुचि ऊपर सुख सानै ॥
 वेद पुराननि खोजि कै पायो कतहुँ न एक ।
 गुन ही के गुन होहि तुम, कहो अकासहि टेक ॥
 सुनौ ब्रजनागरी ।

जौं उनके गुन नाहिं और गुन भए कहाँ ते ।
 बीज बिना तरु जमै मोहिं तुम कहौ कहाँ ते ॥
 वा गुन की परछाँह री माया दरपन बीच ।
 गुन तैं गुन न्यारे भए, अमल वारि जल कीच ॥
 सखा सुनु श्याम के ।

जुगल
मान
चरित्र

✓ 3. कृष्णदास—ये भी वल्लभाचार्यजी के शिष्य और अष्टछाप में थे। यद्यपि ये शूद्र थे पर आचार्यजी के बड़े कृपापात्र और मंदिर के प्रधान मुखिया हो गए थे। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में इनका कुछ वृत्त दिया हुआ है। एक बार गोसाईं विट्ठलनाथजी से किसी बात पर अप्रसन्न होकर इन्होंने उनकी ड्योढ़ी बंद कर दी। इस पर गोसाईं विट्ठलनाथजी के कृपापात्र महाराज बीरबल ने इन्हें कैद कर लिया। पीछे गोसाईंजी इस बात से बड़े दुखी हुए और इनको कारागार से मुक्त कराके प्रधान के पद पर फिर ज्यों का त्यों प्रतिष्ठित कर दिया। इन्होंने भी और सब कृष्णभक्तों के समान राधाकृष्ण के प्रेम को लेकर शृंगार रस के ही पद गाए हैं। 'जुगलमान चरित्र' नामक इनका एक छोटा सा ग्रंथ मिलता है। इसके अतिरिक्त इनके बनाए दो ग्रंथ और कहे जाते हैं—भ्रमरगीत और प्रेमतत्त्वनिरूपण। फुटकल पदों के संग्रह इधर उधर मिलते हैं। सूरदास और नंददास के सामने इनकी कविता साधारण कोटि की है। इनके कुछ पद नीचे दिए जाते हैं—

तरनि तनया तट आवत है प्रात समय,

कंदुक खेलत देख्यो आनंद को कंदवा॥

नूपुर पद कुनित, पीतांबर कटि बाँधे,
लाल उपरना, सिर मोरन के चँदवा॥

कंचन मनि मरकत रस ओपी ।
नंदसुवन के संगम सुखकर अधिक विराजति गोपी॥
मनहुँ विधाता गिरिधर पिय हित सुरतधुजा सुख रोपी ।
बदन कांति कै सुनु री भामिनी! सघन चंदश्री लोपी॥
प्राननाथ के चित चोरन को भौंह भुजंगम कोपी ।
कृष्णदास स्वामी बस कीन्हें, प्रेमपुंज को चोपी॥

मो मन गिरधर छवि पै अटक्यो ।
ललित त्रिभंग चाल पै चलि कै, चिबुक चारि गड़ि ठटक्यो ।
सजल स्याम घन बरन लीन ह्वै, फिरि चित अनत न
भटक्यो ।

कृष्णदास किए प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो॥

कहते हैं कि इसी अंतिम पद को गाकर कृष्णदासजी ने शरीर छोड़ा था ।
इनका कविताकाल संवत् 1600 के आगे पीछे माना जा सकता है ।

✓ 4. परमानंददास—यह भी वल्लभाचार्यजी के शिष्य और अष्टछाप में थे। ये संवत् 1606 के आसपास वर्तमान थे। इनका निवासस्थान कन्नौज था। इसी से ये कान्यकुब्ज अनुमान किए जाते हैं। ये अत्यंत तन्मयता के साथ बड़ी ही सरल कविता करते थे। कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर आचार्यजी कई दिनों तक तन बदन की सुध भूले रहे। इनके फुटकल पद कृष्णभक्तों के मुँह से प्रायः सुनने में आते हैं। इनके 835 पद 'परमानंदसागर' में हैं। दो पद देखिए—

कहा करौ बैकुंठहि जाय?

जहँ नहिं नंद, जहाँ न जसोदा, नहिं जहँ गोपी ग्वाल न गाय।

जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल और नहीं कदमन की छाँयें।

परमानंद प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय॥

राधे जू हारावलि टूटी।

उरज कमलदल माल मरगजी, बाम कपोल अलक लट छूटी॥

बर उर उरज करज बिच अंकित, बाहु जुगल बलयावलि फूटी।

कंचुकि चीर बिबिध रंग रंजित, गिरधर अधर माधुरी घूँटी॥

आलस बलित नैन अनियारे, अरुन उनींदे रजनी खूटी।

परमानंद प्रभु सुरति समय रस मदन नृपति की सेना लूटी॥

✓ 5. कुंभनदास—ये भी अष्टछाप के एक कवि थे और परमानंदजी के ही समकालीन थे। वे पूरे विरक्त और धन, मान मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे। एक बार अकबर बादशाह के बुलाने पर इन्हें फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा जहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। पर इसका इन्हें बराबर खेद ही रहा, जैसा कि इस पद से व्यंजित होता है—

संतन को कहा सीकरी सों काम?

आवत जात पहनियाँ दूटी, बिसरि गयो हरि नाम॥

जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिवे परी सलाम।

कुंभनदास लाल गिरिधार बिनु और सबै बेकाम॥

इनका कोई ग्रंथ न तो प्रसिद्ध है और न अब तक मिला है। फुटकल पद अवश्य मिलते हैं। विषय वही कृष्ण की बाललीला और प्रेमलीला है—

तुम नीके दुहि जानत गैया।

चलिए कुँवर रसिक मनमोहन लागों तिहारे पैयाँ॥

तुमहिं जानि करि कनक दोहनी घर तें पठई मैया।

निकटहि है यह खरिक हमारो, नागर लेहुँ बलैया॥

देखियत परम सुदेस लरिकई चित चहुँट्यो सुंदरैया।

कुंभनदास प्रभु मानि लई रति गिरि गोबरधन रैया॥

6. चतुर्भुजदास—ये कुंभनदासजी के पुत्र और गोसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। ये भी अष्टछाप के कवियों में हैं। इनकी भाषा चलती और सुव्यवस्थित है। इनके बनाए तीन ग्रंथ मिले हैं—द्वादशयश, भक्तिप्रताप तथा हितजू को मंगल। इनके अतिरिक्त फुटकल पदों के संग्रह भी इधर उधर पाए जाते हैं। एक पद नीचे दिया जाता है—



जसोदा! कहा कहीं हों बात।

तुम्हरे सुत के करतब मो पै कहत कहे नहिं जात॥

भाजन फोरि, ढारि सब गोरस, लै माखन दधि खात।

जौ बरजौं तौ आँखि दिखावै, रंचहु नाहिं सकात॥

और अटपटी कहैं लौ बरनौं, छुवत पानि सों गात।

दास चतुर्भुज गिरिधर गुन हों कहति कहति सकुचात॥

7. छीतस्वामी—ये विट्ठलनाथजी के शिष्य और अष्टछाप के अंतर्गत थे। पहले ये मथुरा के एक सुसंपन्न पंडा थे और राजा बीरबल ऐसे लोग इनके जजमान थे। पंडा होने के कारण ये पहले बड़े अक्खड़ और उद्दंड थे, पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथजी से दीक्षा लेकर परम शांत भक्त हो गए और श्रीकृष्ण का गुणानुवाद करने लगे। इनकी रचनाओं का समय संवत् 1612 के इधर मान सकते हैं। इनके फुटकल पद ही लोगों के मुँह से सुने जाते हैं या इधर उधर संग्रहीत मिलते हैं। इनके पदों में शृंगार के अतिरिक्त ब्रजभूमि के प्रति प्रेमव्यंजना भी अच्छी पाई जाती

है। ‘हे विधना तोसों अँचरा पसारि माँगों जनम जनम दीजो याही ब्रज बसिबो’ पद इन्हीं का है। अष्टछाप के और कवियों की सी मधुरता और सरसता इनके पदों में भी पाई जाती है, देखिए—

भोर भए नवकुंज सदन तें, आवत लाल गोवर्द्धनधारी ।
लटपट पाग मरगजी माला, सिथिल अंग डगमग गति न्यारी॥
बिनु गुन माल बिराजति उर पर, नखछत द्वैज चंद अनुहारी ।
छीतस्वामी जब चितए मो तन, तब हों निरखि गई बलिहारी॥

✓ 8. गोविंदस्वामी—ये अंतरी के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे जो विरक्त की भाँति आकर महावन में रहने लगे थे। पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य हुए जिन्होंने इनके रचे पदों से प्रसन्न होकर इन्हें अष्टछाप में लिया। ये गोवर्द्धन पर्वत पर रहते थे और उसके पास ही इन्होंने कदंबों का एक अच्छा उपवन लगाया था जो अब तक ‘गोविंदस्वामी की कदंबखंडी’ कहलाता है। इनका रचनाकाल संवत् 1600 और 1625 के भीतर ही माना जा सकता है। ये कवि होने के अतिरिक्त बड़े पक्के गवैये थे। तानसेन कभी कभी इनका गाना सुनने के लिए आया करते थे। इनका बनाया एक पंद दिया जाता है—

प्रात समय उठि जसुमति जननी गिरिधर सुत को उबटि न्हावति ।
करि सिंगार बसन भूषन सजि फूलन रचि रचि पाग बनावति ।
छुटे बंद बागे अति सोभित, बिच बिच चोव अरगजा लावति ।
सूयन लाल फूँदना सोभित, आजु कि छबि कसु कहति न आवति॥
बिबिध कुसुम की माला उर धरि श्री कर मुरली बेंत गहावति ।
लै दरपन देखे श्रीमुख को, गोविंद प्रभु चरननि सिर नावति॥

✓ 9. हितहरिवंश—राधाबल्लभी संप्रदाय के प्रवर्तक गोसाईं हितहरिवंश का जन्म संवत् 1559 में मथुरा से 4 मील दक्षिण बादगाँव में हुआ था। राधाबल्लभी संप्रदाय के पं. गोपालप्रसाद शर्मा ने इनका जन्म संवत् 1530 माना है, जो सब घटनाओं पर विचार करने से ठीक नहीं जान पड़ता। ओरछानरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यासजी संवत् 1622 के लगभग आपके शिष्य हुए थे। हितहरिवंशजी गौड़ ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशवदास मिश्र और माता का नाम तारावती था।

कहते हैं कि हितहरिवंशजी पहले माध्वानुयायी गोपाल भट्ट के शिष्य थे। पीछे इन्हें स्वप्न में राधिकाजी ने मंत्र दिया और इन्होंने अपना एक अलग संप्रदाय चलाया। अतः हित संप्रदाय को माध्व संप्रदाय के अंतर्गत मान सकते हैं। हितहरिवंशजी के चार पुत्र और एक कन्या हुई। पुत्रों के नाम वनचंद्र, कृष्णचंद्र, गोपीनाथ और मोहनलाल थे। गोसाईंजी ने संवत् 1582 में श्री राधाबल्लभजी की मूर्ति वृंदावन में स्थापित की और वहीं विरक्त भाव से रहने लगे। ये संस्कृत के

अच्छे विद्वान् और भाषा काव्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। 170 श्लोकों का ‘राधासुधानिधि’ आप ही का रचा कहा जाता है। ब्रजभाषा की रचना आपकी यद्यपि बहुत विस्तृत नहीं है, तथापि है बड़ी सरस और हृदयग्राहिणी। आपके पदों का संग्रह ‘हित चौरासी’ के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि उसमें 84 पद हैं। प्रेमदास की लिखी इस ग्रंथ की एक बहुत बड़ी टीका (500 पृष्ठों की) ब्रजभाषा गद्य में है।

इनके द्वारा ब्रजभाषा की काव्यश्री के प्रसार में बड़ी सहायता पहुँची। इनके कई शिष्य अच्छे अच्छे कवि हुए हैं। हरिराम व्यास ने इनके गोलोकवास पर बड़े चुभते पद कहे हैं। सेवकजी, ध्रुवदास आदि इनके शिष्य बड़ी सुंदर रचना कर गए हैं। अपनी रचना की मधुरता के कारण हितहरिवंशजी श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार कहे जाते हैं। इनका रचनाकाल संवत् 1600 से संवत् 1640 तक माना जा सकता है। ‘हित चौरासी’ के अतिरिक्त इनकी फुटकल बानी भी मिलती है जिसमें सिद्धांत संबंधी पद हैं। इनके ‘हित चौरासी’ पर लोकनाथ कवि ने एक टीका लिखी है। वृंदावन ने इनकी स्तुति और वंदना में ‘हितजी की सहस्रनामावली’ और चतुर्भुजदास ने ‘हितजू को मंगल’ लिखा है। इसी प्रकार हितपरमानंदजी और ब्रजजीवनदास ने इनकी जन्मबधाइयाँ लिखी हैं। हितहरिवंश की रचना के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं जिनसे इनकी वर्णन प्रचुरता का परिचय मिलेगा—

(सिद्धांत संबंधी कुछ फुटकल पदों से)

रहौ कोउ काहू मनहिं दिए ।

मेरे प्राननाथ श्री स्यामा सपथ करौं तिन छिए॥

जो अवतार कदंब भजत हैं धरि दृढ़ ब्रत जु हिए ।

तेऊ उमगि तजत मर्यादा बन बिहार रस पिए॥

खोए स्तन फिरत जो घर घर कौन काज इमि जिए ?

हितहरिवंस अनत सचु नाहीं बिन या रसहिं पिए॥

(हित चौरासी से)

ब्रज नव तरुनि कदंब मुकुटमनि स्यामा आजु बनी ।

नख सिख लौं अँग अँग माधुरी मोहे स्याम धनी॥

यों राजति कबरी गूथित कच कनक कंज बदनी ।

चिकुर चंद्रिकन बीच अधर बिधु मानौ ग्रसित फनी ।।

सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी ।

भृकुटि काम कोदंड, नैन सर, कज्जल रेख अनी॥

भाल तिलक, ताटंक गंड पर, नासा जलज मनी ।

दसन कुंद, सरसाधर पल्लव, पीतम मन समनी॥

हितहरिवंस प्रसंसित स्यामा कीरति विसद घनी ।

गावत श्रवननि सुनत सुखाकर विश्व दुरित दवनी॥

बिपिन घन कुंज रति केलि भुज मेलि रुचि
 स्याम स्यामा मिले सरद की जामिनी ।
 हृदय अति फूल, रसमूल पिय नागरी
 कर निकर मत्त मनु बिबिध गुन रागिनी॥
 सरस गति हास परिहास आवेस बस
 दलित दल मदन बल कोक रस कामिनी ।
 हितहरिबंस सुनि लाल लावन्य भिदे
 प्रिया अति सूर सुख सूरत संग्रामिनी॥

✓ 10. गदाधर भट्ट—ये दक्षिणी ब्राह्मण थे । इनके जन्म संवत् आदि का ठीक ठीक पता नहीं । पर यह बात प्रसिद्ध है कि ये श्री चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे । इसका समर्थन भक्तमाल की इन पंक्तियों से भी होता है—

भागवत सुधा बरखै बदन, काहू को नाहिंन दुखद ।

गुणनिकर गदाधर भट्ट अति सबहिन को लागै सुखद॥

श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव संवत् 1542 में और गोलोकवास 1584 में माना जाता है । अतः संवत् 1584 के भीतर ही आपने श्री महाप्रभु से दीक्षा ली होगी । महाप्रभु के जिन छह विद्वान् शिष्यों ने गौड़ीय संप्रदाय के मूल संस्कृत ग्रन्थों की रचना की थी उनमें जीव गोस्वामी भी थे । ये वृंदावन में रहते थे । एक दिन दो साधुओं ने जीव गोस्वामी के सामने गदाधर भट्टजी का यह पद सुनाया—


 सखी हों स्याम रंग रंगी ।
 देखि बिकाय गई वह मूरति, सूरत माँहि पगी॥
 संग हुतो अपनो सपनो सो सोइ रही रस खोई ।
 जागेहु आगे दृष्टि परै, सखि, नेकु न न्यारो होई॥
 एक जु मेरी अँखियन में निसि द्यौस रह्यो करि भौन ।
 गाय चरावन जात सुन्यो, सखि सो धौं कन्हैया कौन ?
 कासौं कहौं कौन पतियावै कौन करे बकवाद ?
 कैसे कै कहि जाति गदाधर, गूँगे ते गुर स्वाद ?

इस पद को सुन जीव गोस्वामी ने भट्टजी के पास यह श्लोक लिख भेजा—

अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्ममाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्कम् ।

असम्भाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान कुतःश्यामासिन्धोः रहस्यावगाहः॥

यह श्लोक पढ़कर भट्टजी मूर्छित हो गए फिर सुध आने पर सीधे वृन्दावन में जाकर चैतन्य महाप्रभु के शिष्य हुए। इस वृत्तांत को यदि ठीक मानें तो इनकी रचनाओं का आरंभ 1580 से मानना पड़ता है और अंत संवत् 1600 के पीछे। इस हिसाब से इनकी रचना का प्रादुर्भाव सूरदासजी के रचनाकाल के साथ साथ अथवा उससे भी कुछ पहले से मानना होगा।

संस्कृत के चूड़ांत पंडित होने के कारण शब्दों पर इनका बहुत विस्तृत अधिकार था। इनका पदविन्यास बहुत ही सुंदर है। गोस्वामी तुलसीदासजी के समान इन्होंने संस्कृत पदों के अतिरिक्त संस्कृतगर्भित भाषा कविता भी की है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

जयति श्री राधिके, सकल सुख साधिके,
 तरुनि मनि नित्य नव तन किसोरी ।
 कृष्ण तन लीन मन, रूप की चातकी,
 कृष्ण मुख हिम किरन की चकोरी॥
 कृष्ण दृग भृंग विश्राम हित पद्मिनी,
 कृष्ण दृग मृगज बंधन सुडोरी ।
 कृष्ण अनुराग मकरंद की मधुकरी,
 कृष्ण गुन गान रससिंधु बोरी॥
 विमुख पर चित्त तें चित्त जाको सदा,
 करति निज नाह कै चित्त चोरी ।
 प्रकृति यह गदाधर कहत कैसे बने,
 अमित महिमा, इतै बुद्धि थोरी॥

झूलति नागरि नागर लाल ।

मंद मंद सब सखी झुलावति, गावति गीत रसाल॥

फरहरात पट पीत नील के, अंचल चंचल चाल ।

मनहुँ परस्पर उमगि ध्यान छबि, प्रगट भई तिहि काल॥

सिलसिलात अति प्रिया सीस तें, लटकति बेनी भाल ।

जन प्रिय मुकुट बरहि भ्रम बस तहँ ब्याली बिकल बिहाल॥

मल्लीमाल प्रिया के उर की, पिय तुलसीदल माल ।

जनु सुरसरि रवितनया मिलिकै सोभित श्रेनि मराल॥

स्यामल गौर परस्पर प्रति छबि, सोभा बिसद विसाल ।

निरखि गदाधर रसिक कुँवरि मन पर्यो सुरस जंजाल॥

11. मीराबाई—ये मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री, राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधराजी की प्रपौत्री थीं। इनका जन्म संवत् 1573 में चोकड़ी नाम के एक गाँव में हुआ था और विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराजजी के साथ हुआ था। ये आरंभ से ही कृष्णभक्ति में लीन रहा करती थीं। विवाह के उपरांत थोड़े दिनों में इनके पति का परलोकवास हो गया। ये प्रायः मंदिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्ण भगवान् की मूर्ति के सामने आनंदमग्न होकर नाचती और गाती थीं। कहते हैं कि इनके इस राजकुलविरुद्ध

आचरण से इनके स्वजन लोकनिंदा के भय से रुष्ट रह करती थीं। यहाँ तक कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष देने का प्रयत्न किया गया, पर भगवत् कृपा से विष का कोई प्रभाव इन पर न हुआ। घरवालों के व्यवहार से सिन्न होकर ये द्वारका और वृंदावन के मंदिरों में धूम-धुमकर भजन सुनाया करती थीं। जहाँ जाती वहाँ इनका देवियों का सा सम्मान होता। ऐसा प्रसिद्ध है कि घरवालों से तंग आकर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी को यह पद लिखकर भेजा था—

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण दूषण हनन गोसाईं।
बारहिं बार प्रनाम करहुँ, अब हरहुँ सोक समुदाई॥
पर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कतेस महदाई॥
मेरे मात पिता के सम हो, हरिभक्तन्ह सुखदाई।
हमको कहा उचित करियो हे, सो लिखिए समझाई॥

इस पर गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका का यह पद लिखकर भेजा था—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो नर तजिय कोटि बेरी सम जयपि परम सनेही॥

नाते सबै राम के भनियत सुद्ध सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा ओखि जो फूटे, बहुतक कहीं कहीं लौं॥

पर मीराबाई की मृत्यु द्वारका में संवत् 1603 में हो चुकी थी। अतः यह जनश्रुति किसी की कल्पना के आधार पर ही चल पाड़ी।

मीराबाई की उपासना 'माधुर्यभाव' की थी अर्थात् वे अपने दृष्टदेव श्रीकृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं। पहले यह कहा जा चुका है कि इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य है। इसी ढंग की उपासना का प्रचार सूफी भी कर रहे थे अतः उनका संस्कार भी इन पर अवश्य कुछ पड़ा। जब लोग इन्हें सुते मैदान मंदिरों में पुरुषों के सामने जाने से मना करते तब वे कहती कि 'कृष्ण के अतिरिक्त और पुरुष है कौन जिसके सामने लज्जा करूँ?' मीराबाई का नाम भारत के प्रधान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यासजी, मलुकदास आदि सब भक्तों ने किया है। इनके पद कुछ तो राजस्थानी मिश्रित भाषा में हैं और कुछ विशुद्ध साहित्यिक व्रजभाषा में। पर सबमें प्रेम की तल्लीनता समान रूप से पाई जाती है। इनके बनाए चार ग्रंथ कहे जाते हैं—नरसीजी का मायरा, गीतगोविंद टीका, राग गोविंद, राग सोरठ के पद।

इनके दो पद नीचे दिए जाते हैं—

बसो मेरे नैनन में नंदतात।

मोहनि मूर्ति, साँवरि सूरति, नैना बने रसात।

भोर मुकुट मकराकृत कुंडल, अरुन तिलक दिए भात॥
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती मात॥
सुदधंठिका कटि तट सोभित, नूपुर शब्द रसात॥
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्तवत्स गोपात॥

मन रे परसि हरि के चरन।
सुभग सीतल कमल कोमल निविध ज्वाला हरन॥
जो चरन प्रह्लाद परसे इंद्र पदवी हरन।
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों राखि अपनी सरन॥
जिन चरन ब्रह्मांड भेट्यो नखशिखी श्री भरन।
जिन चरन प्रभु परस सीन्हें तरी गौतम धरनि॥
जिन चरन पार्यो गोवर्धन गरब-मणवा-हरन।
दासि मीरा सात गिरधर अगम तारन तरन॥

✓ 12. स्वामी हरिदास—ये महात्मा वृंदावन में निगार्क मतान्तर्गत टीही संप्रदाय के संस्थापक थे और अकबर के समय में एक सिद्ध भक्त और संगीत कला कोविद माने जाते थे। कविताकाल संवत् 1600 से 1617 ठहरता है। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन इनका मुख्यतः सम्मान करते थे। यह प्रसिद्ध है कि अकबर बादशाह सायु के वेश में तानसेन के साथ इनका गाना सुनने के लिए गया था। कहते हैं कि तानसेन इनके सामने गाने लगे और उन्होंने जान बूझकर गाने में कुछ भूल कर दी। इस पर स्वामी हरिदास ने उसी गान को शुद्ध करके गाया। इस पुक्ति से अकबर को इनका गाना सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। पीछे अकबर ने बहुत कुछ पूजा चढ़ानी चाही, पर इन्होंने स्वीकृत न की। इनका जन्म संवत् आदि कुछ ज्ञात नहीं, पर इतना निश्चित है कि ये सनाढ्य ब्राह्मण थे जैसा कि सहपरि सरनदासजी ने, जो इनकी शिष्यपरंपरा में थे, लिखा है। वृंदावन से उठकर स्वामी हरिदासजी कुछ दिन निधुवन में रहे थे। इनके पद कठिन राग रागिनियों में गाने योग्य हैं। पढ़ने में कुछ ऊबड़ खाबड़ लगते हैं। पदविन्यास भी और कवियों के समान सर्वत्र मधुर और कोमल नहीं हैं, पर भाव उत्कृष्ट है। इनके पदों के तीन चार संग्रह 'हरिदासजी के ग्रंथ', 'स्वामी हरिदासजी के पद' 'हरिदासजी की बानी' आदि नामों से मिलते हैं। एक पद देखिए—

ज्यों ही ज्यों ही तुम राखत हों, त्यों ही त्यों ही रहियत हों, हे हरि!
और अपरचे पाय परों सुतों कहीं कौन के पैड भरि॥
जदपि हों अपनी भायो कियो चाहों, कैसे करि सकों जो तुम राखी पकरि।
कहे हरिदास पिंजरा के जनावर सों तत्पराय रखी उड़िये को कितोऊ करि॥

✓ 13. सूरदास मदनमोहन—ये अकबर के समय में संदीले के अभीन थे। जाति

क्रैश कोर्स : कक्षा 6

कृष्णभक्ति काव्य

डॉ. साक्षी सिंह

1. निम्न में से किस संप्रदाय में राधा को उपास्य मानकर आनुषंगिक रूप से कृष्ण की उपासना की जाती है?

- ✓ A. राधावल्लभ संप्रदाय
- B. सनकादि संप्रदाय
- C. सखी संप्रदाय
- D. गौणीय संप्रदाय

SAKSHIJRF

2. “ऊभी ठाड़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर॥ मीरा के प्रभु हरि अविनासी, दूँगी प्राण अँकोर॥” पंक्तियों में प्रयुक्त शब्द ‘अँकोर’ का भावार्थ है?

A. अंक

☒ B. भेंट

C. सुंदर

D. कमल

SAKSHIJRF

3. पुष्टिमार्गीय भक्ति के तीन फलों में शामिल नहीं है?

- ✓ A. माधुर्य भाव या कांता भाव से कृष्ण की भक्ति करना - सही
- B. रसरूप पुरुषोत्तम के स्वरूपानंद की शक्ति प्राप्त कर उसकी लीला में प्रविष्ट होना
- C. पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीअंग अथवा आभूषण आदि का अंग बनना
- D. प्राकृतिक देहेन्द्रियादि से मुक्त होकर अप्राकृतिक शरीर में भगवान के बैकुंठ आदि लोकों में आनंद भोग की स्थिति प्राप्त करना

4. किस वैष्णव संप्रदाय का मत है कि जीव अवस्था भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है तथा अभिन्न भी है?

✓ A. सनकादि संप्रदाय

B. रुद्र संप्रदाय

C. श्री संप्रदाय

D. ब्रह्म संप्रदाय

जै २१ औ ५ व १५

SAKSHIJRF

5. “विमल बुद्धि गुण और कि यह गुण श्रवणनि धरै।” नाभादास की यह पंक्ति किस कवि के संदर्भ में प्रयुक्त हुई है?

A. तुलसीदास

B. रामानंद

☒ C. सूरदास

D. नंददास

SAKSHIJRF

6. किनकी मृत्यु पर श्री हरिराम व्यास ने अग्रांकित पंक्तियाँ कही थीं? “बड़ौ
अभाग्य अनन्य सभा को उठि गयौ ठाठ सिंगार।”

- A. चतुर्भुजदास
- B. स्वामी हरिदास
- ✓ C. हितहरिवंश
- D. अक्षर अनन्य

SAKSHIJRF

7. निम्नलिखित में से किस कृष्णभक्त कवि के साथ उनकी रचना सुमेलित नहीं है?

A. चतुर्भुजदास : द्वादशयश

B. श्रीभट्ट : युगलशतक

C. ध्रुवदास : नेहमंजरी

✓ D. रहीम : रासपंचाध्यायी

SAKSHIJRF

निर्धारित

रहीम

8. “यह कवि होने के अतिरिक्त बड़े पक्के गवैया थे। तानसेन कभी-कभी इनका गाना सुनने के लिए आया करते थे।” आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन अष्टछाप के किस संत कवि के संदर्भ में आया है?

A. कृष्णदास

☒ B. गोविंदस्वामी

C. छीतस्वामी

D. चतुर्भुजदास

SAKSHIJRF

9. असत्य कथन चुनिए।

- A. सूरसागर में बाललीला के पद संख्या में सबसे अधिक हैं।
- B. भक्ति की साधना के लिए वल्लभ ने उसके श्रद्धा के अवयव को छोड़कर, जो महत्व की भावना में मग्न करता है, केवल प्रेम लिया।
- C. वल्लभाचार्य के शिष्य पूरनमल खत्री द्वारा गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी का बड़ा भारी मंदिर बनवाया गया।
- ✓ D. भक्तिकाल के भीतर केवल वल्लभाचार्य जी ने शंकराचार्य के भक्ति दर्शन का पक्ष लिया था।

✗ ✗

10. कृष्णभक्ति काव्य के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निम्न कथनों पर विचार कर असंगत कथन का चुनाव करें।

A. कृष्ण संबंधी कविता का स्फुरण मुक्तक के क्षेत्र में ही हुआ, प्रबंध क्षेत्र में नहीं।

B. कृष्ण उपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी।

C. कृष्ण चरित्र के गान में गीतिकाव्य की जो धारा पूर्व में जयदेव और विद्यापति ने बहाई, उसी का अवलंबन ब्रज के भक्त कवियों ने भी किया है।

✓ D. कृष्णभक्ति परंपरा में श्रीकृष्ण की लोकमंगल मूर्ति को ही लेकर लोकपालक की बड़े विस्तार के साथ व्यंजना हुई है।

11. सूरदास के संबंध में असत्य कथन का चयन करें।

- A. सूर पूरी तरह गृहस्थ मानस के कवि हैं।
- B. सूर के शृंगारी पदों की रचना बहुत कुछ जैन कवियों की परंपरा में हुई है।
- C. सूर की भक्ति पद्धति का मेरुदंड पुष्टिमार्गीय भक्ति है।
- D. सूर के 'साहित्यलहरी' ग्रंथ में अलंकारों और नायिकाभेदों के उदाहरण प्रस्तुत करने वाले कूट पद मिलते हैं।

12. “अपनी सीतलताहि न छाँड़त यद्यपि है ससि राहु-गरासी।” पंक्ति निम्नलिखित किस कृष्णभक्त कवि द्वारा रची गई है?

- A. मीरा
- B. रसखान
- ☒ C. सूरदास
- D. नंददास

SAKSHIJRF

D. ज्योंहि ज्योंहि तुम राखत हौं, त्यों ही त्यों ही रहियत हौं, हे हरि। : स्वामी
हरिदास

14. “सूर की विशेषता इस बात में है कि मुक्तक पदों का विधान अपना कर भी उन्होंने परिवार और गृहस्थ जीवन के चित्रण को केंद्र में रखा है।” किस विद्वान का कथन है?

A. रामस्वरूप चतुर्वेदी

B. रामचन्द्र शुक्ल

C. बच्चन सिंह

D. हजारी प्रसाद द्विवेदी

SAKSHIJRF

15. कृष्णभक्त कवियों का आधार ग्रंथ माना जाता है?

A. महाभारत

☒ B. भागवत महापुराण

C. गीता

D. ब्रह्मसूत्र

SAKSHIJRF

16. राधा का प्रथम वर्णन निम्न में से किस रचना में पाया जाता है?

A. देविपुराण

B. बुद्धचरित

☒ C. गाहा सतसई

D. ऋग्वेद

SAKSHIJRF

17. चार वल्लभाचार्य और चार अपने शिष्यों को मिलाकर गोस्वामी विठ्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना कब की?

A. 1532 ई.

B. 1578 ई.

C. 1565 ई.

D. 1602 ई.

SAKSHIJRF

18. कथन I : 'साहित्यलहरी' के अनुसार सूरदास पृथ्वीराज के कवि चंदबरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट थे।

कथन II : रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार संवत् 1580 के आसपास सूरदास जी वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए होंगे।

A. कथन I सही है किंतु कथन II सही नहीं है

B. कथन I और कथन II दोनों सही हैं

C. कथन I सही नहीं है किंतु कथन II सही है

D. कथन I और कथन II दोनों सही नहीं हैं

19. किस विद्वान ने कहा है कि “सूरदास ही ब्रजभाषा के प्रथम कवि हैं और लीलागान का महान समुद्र ‘सूरसागर’ ही उसका प्रथम काव्य है”?

- ✓ A. हजारी प्रसाद द्विवेदी
- B. रामस्वरूप चतुर्वेदी
- C. नामवर सिंह
- D. रामचन्द्र शुक्ल

SAKSHIJRF

20. "पुष्टि मार्ग कौ जहाज जात है। जाय कछू लैनों होय सो लेउ॥" सूरदास की मृत्यु पर यह पद किसने कहा था?

- A. गोकुलनाथ
- ☒ B. विठ्ठलनाथ
- C. गोविंदस्वामी
- D. नंददास

SAKSHIJRF

21. “आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला कीर्तन करने उठी, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी।” किसका कथन है?

- A. बच्चन सिंह
- B. रामचन्द्र शुक्ल
- C. विश्वनाथ त्रिपाठी
- D. रामस्वरूप चतुर्वेदी

SAKSHIJRF

22. किस विद्वान ने कहा कि “सूरदास जब अपने विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है। संगीत के प्रवाह में कवि स्वयं बह जाता है”?

- A. बच्चन सिंह
- B. रामचन्द्र शुक्ल
- C. विश्वनाथ त्रिपाठी
- D. हजारी प्रसाद द्विवेदी

23. A : संपूर्ण हिंदी साहित्य में कृष्णभक्ति काव्य-परंपरा सबसे लंबी और समृद्ध है।

R : यह 15वीं शताब्दी से आरंभ होकर 20वीं शताब्दी में रत्नाकर के बाद तक चलती रहती है।

- A. A सही, R गलत
- B. A और R दोनों गलत
- C. A गलत, R सही
- D. A और R दोनों सही

SAKSHIJRF

24. किसके भय से सूरदास श्रीनाथ मंदिर छोड़कर पारसौली गाँव में रहने लगे थे?

- A. कृष्णदास
- B. नंददास
- C. कुंभनदास
- D. गोविंदस्वामी

SAKSHIJRF

25. डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार निम्न में से किस कृष्णभक्त कवि का संगीत सुनने अकबर वृंदावन आया था?

- A. हित हरिवंश
- B. स्वामी हरिदास
- C. सूरदास
- D. मीराबाई

SAKSHIJRF

26. “वह मथुरा काजल की कोठरी जे आवहिं ते कारे।। तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।” इन पंक्तियों में प्रयुक्त ‘सुफलकसुत’ शब्द से कवि का अभिप्राय है?

- A. कंस
- B. अक्रूर
- C. उद्धव
- D. कृष्ण

SAKSHIJRF

27. “कुंडल झलकां कपोल अलकां लहराई। मीणा तज सरवर ज्यों मकर मिलन आई॥” पंक्तियाँ किस भक्तिकालीन कवि की हैं?

- A. हित हरिवंश
- B. स्वामी हरिदास
- C. सूरदास
- D. मीराबाई

SAKSHIJRF

28. “देख्या रूप मदन मोहन री, पियत पियुखन मटके। बारिज भवां अलक मतवारी, णेणे रूप रस अटके।” प्रस्तुत पद में प्रयुक्त शब्द ‘पियुखन’ और ‘भवां’ के अर्थ से संबंधित सही युग्म है?

- A. पीयूष-भ्रमर
- B. पतूखी-बवंडर
- C. कमल-भ्रमर
- D. पीयूष-बवंडर

SAKSHIJRF

29. “सबै अयानि भई सुनी मुरली ठगी कपट की छाजन। अब मन भयो सिंधु के खग ज्यों फिरी फिरी सरत जहाजन।” प्रस्तुत पंक्तियों में प्रयुक्त शब्द ‘अयानि’ का अर्थ है?

- A. आ गईं
- B. अज्ञानी
- C. आज ही
- D. मूर्च्छित

SAKSHIJRF

30. “जिन चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम धरण। जिन चरण कालिही नाथ्यो,
गोप लीला करण॥ किसके द्वारा रचित पंक्तियाँ हैं?

- A. तुलसीदास
- B. नाभादास
- C. मीरा
- D. सूरदास

SAKSHIJRF

उत्तर कुंजी

प्र.सं.	उत्तर
1.	A
2.	B
3.	A
4.	A
5.	C
6.	C
7.	D
8.	B
9.	D
10.	D

प्र.सं.	उत्तर
11.	B
12.	C
13.	C
14.	A
15.	B
16.	C
17.	C
18.	B
19.	A
20.	B

प्र.सं.	उत्तर
21.	B
22.	D
23.	D
24.	A
25.	B
26.	B
27.	D
28.	A
29.	B
30.	C